किसान अंक

ISSN 0975-8321

वाङ्मय

(त्रैमासिक हिन्दी पत्रिका)

सम्पादक
डॉ. एम. फ़ीरोज़ अहमद

ISSN 0975-8321

वाङ्मय त्रैमासिक

वर्ष : 22 **अक्टूबर 2024–मार्च (संयुक्तांक) 2025**

सम्पादक
डॉ. एम. फ़ीरोज़ अहमद
मोबाइल : ९०४४९१८६७०

सलाहकार सम्पादक
प्रो. मेराज अहमद
(ए.एम.यू. अलीगढ़)

परामर्श मण्डल
प्रो. रामकली सराफ(वाराणसी)
डॉ. शगुफ़्ता नियाज़ (अलीगढ़)

सम्पादकीय सम्पर्क
205- फेज-1, ओहद रेजीडेंसी,
नियर पान वाली कोठी,
दोदपुर रोड, सिविल लाइन, अलीगढ़-202002
मोबाइल : 7007606806
E-mail : vangmaya@gmail.com

इस अंक का मूल्य–175/–

सहयोग राशि :
द्विवार्षिक शुल्क व्यक्तिगत/संस्थाओं के लिए : 800 रुपए

सह–सम्पादक
डॉ. मोहम्मद आसिफ खान

पुनरावलोकन समिति :
• प्रो. मेराज अहमद, हिन्दी विभाग, ए.एम.यू. अलीगढ़
• प्रो. इकरार अहमद, प्राचार्य, विवेकानंद ग्रामद्योग महाविद्यालय, दिबियापुर, औरैया

कानूनी सलाहकार
एम. एच. खान, एडवोकेट(हाईकोर्ट, इलाहाबाद)
एम. ए. खान, एडवोकेट(हाईकोर्ट, इलाहाबाद)

सम्पादन/संचालन
अनियतकालीन, अवैतनिक और अव्यावसायिक।
रचनाकार की रचनाएँ उसके अपने विचार हैं।
रचनाओं पर कोई आर्थिक मानदेय नहीं दिया जाएगा।
लेखकों, सदस्यों एवं मित्रों के आर्थिक सहयोग से पत्रिका प्रकाशित होती है।
उनसे सम्पादक-प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।
किसी भी विवाद के लिए न्याय क्षेत्र अलीगढ़ होगा।

रचनाकारों से.....

० रचनाएँ कृतिदेव 10 में टाइप कराकर ही भेजें। ० रचनाओं के साथ पोस्टकार्ड होने पर ही प्राप्ति की सूचना भेजी जाएगी। ० डाक टिकट लगा लिफाफा साथ आने पर ही अस्वीकृति रचना लौटायी जा सकती है अन्यथा नष्ट कर दी जाएगी। ० कृतियों की समीक्षा के लिए पुस्तक की दो प्रतियाँ भेजना अनिवार्य है। ० नमूना प्रति अवलोकन के लिए 300 रुपये भेजना अनिवार्य है। ० हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं की रचनाओं का वाङ्मय स्वागत करता है।

शुल्क भेजने का पता

मनीआर्डर या बैंक ड्राफ्ट : *'डॉ. फ़ीरोज़ अहमद' या 'वाङ्मय'* के नाम

205- फेज-1, ओहद रेजीडेंसी, नियर पान वाली कोठी, दोदपुर रोड, सिविल लाइन, अलीगढ़-202002

डॉ. एम. फ़ीरोज़ अहमद की ओर से डॉ. एम. फ़ीरोज़ अहमद द्वारा प्रकाशित, डॉ. एम. फ़ीरोज़ अहमद द्वारा मुद्रित तथा नवमान आफसेट प्रिंटर्स अलीगढ़ में मुद्रित एवं ई-3, अब्दुल्लाह क्वाटर्स, लाल बहादुर शास्त्री मार्ग अलीगढ़ से प्रकाशित।

सम्पादक- डॉ. एम. फ़ीरोज़ अहमद

सम्पादकीय

भारत एक कृषि प्रधान देश है। भारत के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक जीवन में सर्वत्र कृषि की ही प्रधानता दिखाई देती है। भारत के दिन-त्यौहार कृषि चक्र पर ही आधारित हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार भारत की लगभग 54 प्रतिशत जनसंख्या आज भी कृषि पर निर्भर है। हमारी भारतीय संस्कृति का मूल आधार कृषि है। हमारे लगभग सभी पर्व- त्यौहार, परंपराएँ-मान्यताएँ कृषि कर्म से ही जुड़े हुए हैं और कृषि कार्य के ही चारों ओर घूमते हैं।

एक समय ऐसा था जब कृषि कार्य को समाज सेवा का कार्य माना जाता था। जनता के लिए धन इतना महत्त्वपूर्ण नहीं था जितना कि अन्न। इसीलिए अन्न को ही धन माना जाता था। हमारे शास्त्रों में कृषि कार्य को सबसे उत्तम कार्य की संज्ञा से विभूषित किया गया है। कहा भी गया है—''उत्तम खेती मध्यम बान, निषिद चाकरी भीख निदान।'' कृषक को अन्न देवता कहकर सम्मान दिया जाता रहा है। परन्तु धीरे-धीरे परिस्थितियाँ बदलती चली गईं। भूमण्डलीकरण, बाज़ारीकारण ने जीवन का रंग-रूप कुछ इस तरह से बदल डाला कि अर्थ केन्द्रित समाज का निर्माण होता चला गया। उपभोक्तावादी संस्कृति ने शारीरिक श्रम के पक्ष की अपेक्षा आर्थिक पक्ष को अधिक महत्त्व दिया और ज़मीन से जुड़े कामों को दोयम दर्ज़े का दर्शाकर मानसिक श्रम को ऊपर रखा। इससे कृषि और कृषक दोनों ही पीछे होते चले गए और इन सबका स्थान विभिन्न मशीनों और उद्योग-धंधों ने ले लिया।

किसान आज भी भारतीय संस्कृति और भारतीय साहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। ज़मीन से जुड़े रहने का मोह, परम्परागत ग्रामीण मूल्य इन सबने किसानों को उनकी ज़मीनों और ज़मीनी कार्यों से अलग नहीं होने दिया। परन्तु इन सबके साथ-साथ जितनी अधिक वैज्ञानिकता का समावेश कृषि कार्य में होता चला गया, किसानों के संघर्ष भी उतने ही अनुपात से बढ़ते चले गए। एक समय ऐसा था जब किसान अपने खेतों में काम करता था और जो मिलता था उसी में खुश रहता था परन्तु समय के प्रवाह के साथ किसान के सामने अनेक नई चुनौतियाँ और विपत्तियाँ भी आईं। किसानों ने इन चुनौतियों का सामना विभिन्न प्रकार के आंदोलनों के माध्यम से किया। भारत में किसान आंदोलनों का लंबा इतिहास रहा है। बंगाल का संथाल विद्रोह, नील विद्रोह, पंजाब किसान आंदोलन

आदि कुछ बड़े किसान आंदोलन हैं। भारत को आजादी दिलाने में भी किसान आंदोलन का अपना महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। परन्तु अफसोस की बात है कि जो समस्याएँ किसानों के सामने आजादी से पहले थीं, वही समस्याएँ कुछ बड़े और बदले हुए रूप में आजादी के बाद भी हैं। इतना अधिक विकास होने के बावजूद भी आज किसान अव्यवस्थाओं और दुर्दशाओं के शिकार हैं। आज खेती करने में लाभ कम और हानियाँ अधिक हैं। घटती जोत का आकार, खेती की बढ़ती लागत, बढ़ता जोखिम, मौसम की मार ये सब मिलकर कृषि व्यवस्था पर एक बड़ा कुठाराघात करते हैं जिससे किसान खेती से दूर भाग रहा है। समय की माँग है कि आज कृषि के क्षेत्र में सुधारीकरण किया जाए जिससे किसानों की समस्याओं का उपयुक्त समाधान सम्भव हो सके। हरित क्रान्ति ने यद्यपि कृषि क्षेत्र में आमूल-चूल परिवर्तन लाने में योगदान दिया है परन्तु केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है।

साहित्य समाज के प्रत्येक वर्ग एवं समाज की बात करता है। हिन्दी साहित्य में पिछले कुछ वर्षों में कुछ महत्त्वपूर्ण विमर्श उभरकर सामने आए हैं जिनमें से एक महत्त्वपूर्ण विमर्श है 'किसान विमर्श'। यह ज़मीन से जुड़े व्यक्ति के लिए ज़मीन से जुड़ा विमर्श है जिसमें ज़मीन से जुड़े मुद्दों को प्रधानता दी जाती है। किसान विमर्श में कृषक जीवन से सम्बन्धित साहित्य का अभाव नहीं है। यह भी उल्लेखनीय तथ्य है कि सम्पूर्ण विश्व साहित्य में कृषक जीवन चर्चा का एक महत्त्वपूर्ण बिन्दु रहा है। कृषक जीवन से सम्बन्धित अनेक उपन्यासों और कहानियों की रचना की गई है।

'वाङ्मय' के प्रस्तुत विशेषांक में किसान विमर्श (2000-2023) पर आधारित कुछ उपन्यासों पर आलोचनात्मक आलेख प्रस्तुत किए गए हैं। वर्तमान सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में किसान जीवन की समस्याओं को देखने-समझने का और उनकी ज़मीनी हक़ीक़त को सामने लाने का प्रयास इन लेखकों ने किया है। विशेषांक में दो आलेख भारतीय आत्मा माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा संपादित पत्र 'कर्मवीर' पर भी केंद्रित हैं। 'कर्मवीर' राष्ट्रहित का चिन्तनपरक पत्र था। इसकी फाइलों में किसान दस्तावेज़ और किसान जीवन पर इसकी दृष्टि जैसे दो शोधपरक आलेख भी पत्रिका में सम्मिलित किए गए हैं। पाठकों और शोधार्थियों के लिए ये आलेख निश्चित रूप से उपयोगी सिद्ध होंगे।

किसान विमर्श कृषिगत विस्तार का पुनरुद्धार करने का साहित्यिक प्रयास मात्र ही नहीं है बल्कि किसानों की दशा को सामने लाकर किसानों के जीवन स्तर में सार्थक अभिवृद्धि करने का प्रयास है। आशा है कि 'वाङ्मय' के सभी विशेषांकों के समान इस विशेषांक को भी पाठकों का सम्मान प्राप्त होगा।

अनुक्रम

सम्पादकीय/3

खण्ड-क

1. हिन्दी उपन्यासों में किसान-विमर्श/7
   डॉ. रत्नेश सिन्हा
2. किसान भूमि अधिग्रहण, विस्थापन और संघर्ष चेतना
   ('एक थी मैना एक था कुम्हार' उपन्यास के संदर्भ में)/32
   डॉ. रमेश कुमार
3. किसान समस्या के बहाने जीवन-मूल्यों की तलाश 'ढलती साँझ का सूरज'/51
   डॉ. शिवचंद प्रसाद
4. 'हिडिम्ब' उपन्यास में किसान जीवन/60
   डॉ. भावना मासीवाल
5. कर्ज़ में डूबे अन्नदाताओं का मार्मिक 'माटी-राग' उपन्यास/66
   सुधा जुगरान
6. पट्टा चरित : भूमिहीन किसानों की आकुल-कथा/76
   प्रो. चंद्रकांत सिंह
7. बरसों-बरस से लिखी जा रही कहानी- 'अकाल में उत्सव'/87
   डॉ. अल्पना सिंह
8. किसान जीवन की संघर्ष गाथा : 'आखिरी छलाँग'/93
   आलोक कुमार सिंह
9. किसानों की त्रासदी की कराहती आवाज़ : 'कालीचाट'/101
   डॉ. जितेश कुमार

10. किसान, किसानी और आत्महत्या का यथार्थ साक्ष्य 'फाँस' उपन्यास/108
डॉ. प्रीति सिंह
11. ओह रे! किसान : रसायन मुक्त खेती की ओर लौटने के लिए एक जरूरी हस्तक्षेप/116
आशीष कुमार मौर्य
12. कृषक जीवन का दारुण आख्यान : 'तेरा संगी कोई नहीं'/122
डॉ. योगेन्द्र सिंह
13. पुरुष प्रधान समाज में अपनी ज़मीन तलाशता महिला किसान वर्ग (ज़मीन उपन्यास के संदर्भ में)/131
डॉ. बबीता भण्डारी
14. सत्ता से संघर्ष : ताकि बची रहे हरियाली/138
डॉ. मीना राठौर
15. आमार नाम तोमार नाम, सबारई नाम आदिग्राम/144
डॉ. महमुदा खानम
16. कृषक जीवन की समस्या और समाधान प्रस्तुत करता 'चलती चाकी' उपन्यास/152
डॉ. आलोक कुमार सिंह

खण्ड-ख

17. कर्मवीर की फाइलों में किसान-दस्तावेज़/157
डॉ. श्रीराम परिहार
18. कर्मवीर और किसान/164
डॉ. क्षमाशंकर पाण्डेय

खण्ड-ग (विविध)

19. हिन्दी उपन्यासों में दलित नायिका और विद्रोही रूप/168
डॉ. रमाकान्त

1

हिन्दी उपन्यासों में किसान-विमर्श

डॉ. रत्नेश सिन्हा

हिन्दी साहित्य की उपन्यास विधा ने उन्नीसवीं सदी के आरम्भ से अपनी जो यात्रा शुरू की, वह अनवरत जारी है। उन्नीसवीं सदी के सातवें दशक के बाद से हिन्दी उपन्यास की अपनी अलग पहचान बन गई। इस दौरान के उपन्यासों में सामाजिक विमर्श अपने व्यापक स्तर पर चल रहा था। गुलामी के कारण शासन का खुला विरोध नहीं होते हुए भी छद्म रूप से अँग्रेज़ी शासन-व्यवस्था से त्रस्त भारतीयों की दुरवस्था का चित्रण कर उपन्यासकार अपना दबा विरोध जता रहे थे। लाला श्रीनिवास दास के 'परीक्षा गुरु', राधाकृष्ण दास के 'निस्सहाय हिन्दू' तथा भारतेन्दु-मण्डल के अन्य उपन्यासकारों की रचनाओं में अँग्रेज़ी सत्ता के प्रति छद्म आक्रोश का यह विमर्श क्षीण रूप में रेखांकित किया जा सकता है। एक महत्त्वपूर्ण समस्या इस समय में हिन्दी-पाठकों की अल्प संख्या का होना भी रही। किन्तु, बाद में देवकीनंदन खत्री की 'चंद्रकांता' सीरीज ने यह समस्या भी पूरी कर दी और हिन्दी उपन्यास ने प्रेमचंद-युग में अपनी प्रौढ़ता प्राप्त कर ली तथा अपने भीतर कई समसामयिक विमर्शों को समेटती अग्रसर होती रही। हिन्दी उपन्यास में किसान-विमर्श की शुरुआत सम्भवतः यहीं से हुई।

डॉ. गोपाल राय ने 1891-1917 के बीच लिखे उपन्यासों के संबंध में लिखा है— ''इस अवधि का उपन्यास देश के उस विशाल जनसमुदाय से कटा हुआ है जो ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के शोषणचक्र में पिस रहा था। यह जनसमुदाय किसानों का था, जो मुख्यतः गाँवों में रहता था और विदेशी सरकार, जमींदार, महाजन और पुरोहित सबका भक्ष्य बना हुआ था। किशोरीलाल गोस्वामी, महता लज्जाराम शर्मा आदि कुछ उपन्यासकारों ने किसानों पर जमींदारों के अत्याचार, ग्रामीणों की निर्धनता, अशिक्षा तथा उनकी दीनहीन स्थिति का यत्र-तत्र चित्रण किया है, किन्तु यथार्थ के इस ज्वलंत पक्ष पर उनकी सर्जनात्मक दृष्टि नहीं पड़ी है।''[1]